International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

भारत सरकार अधिनियम – 1935: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Pawan Kumar
Assistant Professor in History
Govt. College, Sampla (Rohtak)

शोध आलेख सार– वस्तुतः 1857 ई0 की क्रांति के बाद भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण बदलाव आया और अब कम्पनी के शासन की बजाय भारत पर शासन की बागडोर ब्रिटिश ताज के अधीन आ गई। तत्पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने कई अधिनियम पास किये और इस क्रम में 1935 ई0 का भारत अधिनियम अन्तिम और निर्णायक अधिनियम माना जाता है। इसका प्रमुख कारण यह था कि 1919ई0 के अधिनियम से भारतीय जनमानस नाराज था और कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग दोनों ने इसका विरोध किया था। इसी तरह 1930 ई0 में जब साईमन कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई तो उससे भी भारतीय नाराज हो गये और भावी सुधार की दृष्टि से ब्रिटिश सरकार ने 1930, 1931 तथा 1932 ई0 के तीन गोलमेज सम्मेलन लन्दन में आयोजित हुए। इनमें से केवल दूसरे सम्मेलन में ही कांग्रेस ने भाग लिया और अंततः ब्रिटिश सरकार ने 1933 ई0 में एक श्वेत पत्र जारी किया। इस पर विचार हेतु ब्रिटिश संसद ने एक समिति का गठन किया और इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर ही 'भारत सरकार अधिनियम 1935' पास किया गया। प्रस्तुत शोध पत्र में इस अधिनियम का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

मूलशब्द– ब्रिटिश शासन, प्रान्तीय स्वराज्य, द्वैद्य शासन प्रणाली, भारत परिषद्, गृह सरकार, संघीय कार्यपालिका, संघीय विधानपालिका, संघीय न्यायालय।

भूमिका– वास्तव में 1935 ई0 का भारत सरकार अधिनियम सर्वाधिक लम्बा प्रलेख था और इसकी प्रस्तावना में वही लक्ष्य निर्धारित किया गया जो 1919ई0 के अधिनियम में था। इस अधिनियम में 321 धाराएं तथा 10 परिशिष्ट थे और इसके अन्तर्गत केन्द्रीय

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

तथा प्रान्तीय सरकारों के भावी स्वरूप की योजना प्रस्तुत थी। इसके अन्तर्गत ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्वीकार कर ली गई थी और ब्रिटिश संसद को ही संविधान में संशोधन व सुधार का अधिकार प्राप्त था। इसके अन्तर्गत प्रान्तों में स्वराज्य स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया और एक उत्तरदायी शासन प्रणाली की स्थापना की गई। अब प्रान्तों के शासन की सम्पूर्ण जिम्मेवारी प्रान्तीय विधानमण्डलों के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों के हाथ में दे दी गई। इस अधिनियम में प्रान्तों में प्रचलित द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त करके केन्द्र में लागू कर दिया गया और विषय विभाजन की दृष्टि से तीन सूचियां निर्धारित की गई। इसमें संघीय न्यायालय की स्थापना, भारत परिषद् की समाप्ति, विधानमण्डलों का विस्तार, मताधिकार का विस्तार तथा साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की व्यवस्था भी की गई। इस अधिनियम में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कदम उठाये गए जो भारत के संवैधानिक विकास की दृष्टि से मील का पत्थर माने जाते हैं।

गृह–सरकार की व्यवस्था– इस अधिनियम में भारत सचिव का प्रथम नियन्त्रण शिथिल कर दिया गया और प्रान्तों में स्वायत शासन तथा केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। इससे पहले भारत सचिव के जो अधिकार थे, वे अब ब्रिटिश ताज के अधीन आ गए। अब ब्रिटिश ताज के द्वारा गवर्नर जनरल, गवर्नर, शासन के उच्च पदाधिकारी, सेनापति और संघीय न्यायालयों के नियुक्ति का अधिकार प्राप्त कर लिया गया। उसे राज्यों को भारत संघ में शामिल करने, आदेश पत्र जारी करने, सेना का प्रयोग करने, संघीय व प्रान्तीय कानूनों को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार भी मिल गया। इसके बाद भारत सचिव की स्थिति को बदल दिया गया परन्तु जिन विषयों पर गवर्नर और गवर्नर जनरल को स्व–विवेक का अधिकार प्राप्त था, वह यथावत बना रहा। अब भारत सचिव भारतीय मामलों में ब्रिटिश ताज का संवैधानिक सलाहकार बन गया। इस अधिनियम में भारत परिषद का अंत करके उसके स्थान पर भारत सचिव की

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मदद के लिए सलाहकारों की नियुक्ति की गई तथा इस अधिनियम में भारतीय हाई कमिशनर का पद व स्थिति पूर्ववर्ती बनी रही। अब वह ब्रिटेन में भारतीय हितों का प्रतिनिधि था और वह भारत की तरफ से ब्रिटिश सरकार के साथ कोई भी अनुबंध कर सकता था।

संघीय कार्यपालिका– इस अधिनियम के द्वारा केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई और प्रतिरक्षा, विदेशी सम्बन्ध, चर्च आदि विषयों को संरक्षित विषय माना गया तथा इनके प्रशासन का उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल को सौंपा गया। संघीय कार्यपालिका न तो गवर्नर जनरल और न ही परामर्शदाता किसी के प्रति उतरदायी थे, यह वास्तव में एक अनुतरदायी निकाय था। संघीय कार्यपालिका में गवर्नर जनरल को ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि माना गया और उसकी नियुक्ति ब्रिटिश प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी। इस अधिनियम में गवर्नर जनरल को निरंकुश शक्तियां प्रदान की गई तथा वह चीफ कमिश्नरों, उच्च न्यायालय के न्यायधीशों, रिजर्व बैंक के गवर्नर, संघीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष आदि पदो पर नियुक्ति कर सकता था। उसे संघीय सभा का अधिवेशन बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का अधिकार भी प्राप्त था। उसकी स्वीकृति के बिना कोई भी विधयेक कानून नहीं बन सकता था। वह अध्यादेश जारी करने, मंत्रियों की नियुक्ति करने तथा उन्हें हटाने का अधिकार रखता था। उसे इस अधिनियम के तहत विशेष उत्तरदायित्व भी सौंपे गए। वह भारत में किसी भी भाग में अशान्ति को रोकने, आर्थिक साख की सुरक्षा करने, अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने, सरकारी अधिकारियों के हितों का संरक्षण करने व व्यापार को नियमित रखने, रजवाड़ों के हितों की सुरक्षा करने, ब्रिटेन से आने वाले सामान की आपूर्ति सुचारू बनाये रखने आदि का अधिकार भी रखता था। चूंकि इस

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्तता का भी प्रावधान था, परन्तु गवर्नर जनरल प्रान्तों के गवर्नरों को स्व–विवेक के अनुसार कार्य करने का आदेश दे सकता था।

कार्यकारिणी परिषद– इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को सलाह देने तथा उसकी मदद करने के लिए कार्यकारिणी परिषद स्थापित की गई, जिसमें अधिक से अधिक तीन सदस्य हो सकते थे। इनकी नियुक्त भारत सचिव की सलाह पर ब्रिटिश ताज द्वारा की जाती थी। यह प्रायः पांच वर्ष तक अपने पद पर रहते थे और अपने कार्य के लिए गवर्नर जनरल के प्रति ही उत्तरदायी थे। इस अधिनियम में हस्तांतरित विषयों के सन्दर्भ में प्रशासनिक दृष्टि से एक मंत्रिपरिषद की भी रचना की गई और इसके सदस्य अधिक से अधिक 10 हो सकते थे। इन मन्त्रियों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती थी और ये गवर्नर जनरल के प्रसादपर्यन्त ही अपने पद पर रह सकते थे। चूंकि गवर्नर जनरल किसी गैर–सदनीय व्यक्ति को भी मंत्री बना सकता था, परन्तु उसे 6 महीने के अन्दर ही विधानमण्डल का सदस्य बनना पड़ता था। मन्त्री परिषद की बैठकों की अध्यक्षता गवर्नर जनरल द्वारा ही की जाती थी और सभी मन्त्रियों को विधानमण्डलों के प्रति उतरदायी बनाया गया था। अतः गवर्नर जनरल को निरंकुश शक्तियां प्राप्त थी और वह अपनी तानाशाही प्रवृति को भारतीयों पर थोप सकता था।

संघीय विधानपालिका– इस अधिनियम में द्विसदनीय संघीय विधानसभा का गठन किया गया तथा उच्च सदन का नाम राज्यसभा व निम्न सदन का नाम संघीय सभा रखा गया। इसमें संघीय सभा जनता के हितों की प्रतिनिधि थी और राज्यसभा में संघ की विभिन्न ईकाईयों का प्रतिनिधित्व होता था। संघीय सभा में 375 सदस्य शामिल थे, जिनमें से 250 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के तथा 125 देशी रियासतों के प्रतिनिधि होते थे। राज्यसभा में कुल सदस्य संख्या 260 निर्धारित की गई, जिसमें से 104 सदस्य देशी

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

रियासतों के तथा 156 ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि थे। ब्रिटिश भारत के 156 प्रतिनिधियों में से 150 का चुनाव प्रत्यक्ष होता था तथा 6 सदस्यों को गवर्नर जनरल द्वारा नामित किया जाता था। प्रान्तीय विधानसभाओं में विभिन्न सम्प्रदायों के सदस्य अपने सम्प्रदाय के सदस्यों का निर्वाचन करते थे। वास्तव में संघीय सभा का संगठन काफी दोषपूर्ण था। संघीय विधानपालिका संघ और समवर्ती सूची दोनों पर कानून बना सकती थी। यदि प्रान्तीय विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून से उसका कोई विरोध होता था तो संघीय कानून को ही प्राथमिकता दी जाती थी। संघीय विधानपालिका संघीय विधानमण्डल का गठन कर सकती थी और उसे अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा भंग भी कर सकती थी। संरक्षित विषयों के सन्दर्भ में संघीय विधानपालिका को कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों से प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया था तथा विधानमण्डल काम रोको प्रस्ताव भी पास कर सकता था। वित्तिय मामलों के सन्दर्भ में संघीय विधानपालिका के अधिकार काफी सीमित थे। इस समय बजट के दो भाग भारतीय राजस्व पर भारित व तथा अन्य व्यय थे। पहले भाग पर संघीय विधानमण्डल को केवल बहस करने का अधिकार था और उसे इसमें कटौति करने का कोई अधिकार नहीं था। संघीय विधानमण्डल को भारत सरकार अधिनियम में भी संशोधन करने का अधिकार नहीं था तथा वह ब्रिटिश संसद के खिलाफ जाकर किसी भी प्रकार का कानून नहीं बना सकता था। अतः वह संप्रभु निकाय न होकर गवर्नर जनरल के अधीन कार्य करता था। इस तरह 1935ई0 के भारत सरकार अधिनियम में संघीय विधानमण्डल की व्यवस्था वर्तमान प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के विरूद्ध थी, फिर भी इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को मताधिकार देकर एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना अवश्य की गई।

संघीय न्यायालय– इस अधिनियम के द्वारा भारत में एक संघीय न्यायालय की स्थापना भी की गई जो संघ की विभिन्न ईकाईयों में आपसी विवादों को हल करने तथा संविधान

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

की व्याख्या करने का अधिकार रखता था। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा अधिक से अधिक 6 अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति हो सकती थी। न्यायाधीशों के वेतन व भत्ते उनके कार्यकाल में कम नहीं किये जा सकते थे। उनको केवल प्रिवी परिषद की न्याय समिति द्वारा कदाचार का दोषी पाये जाने पर सिफारिश के आधार पर ब्रिटिश सम्राट ही उन्हें पद से हटा सकता था। इस न्यायालय को प्रारंभिक, अपीलीय तथा परामर्शदात्री अधिकार प्राप्त थे। यह एक अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करता था। इसके मूल्यांकन के आधार पर कहा जाता है कि यह भारत का सबसे बड़ा न्यायालय था परन्तु इसकी शक्तियां सर्वोच्च नहीं थी फिर भी इस न्यायालय ने भारत की स्वतन्त्रता तक महत्वपूर्ण कार्य किया और भारतीय जनता के अधिकारों की रक्षा की। बाद में भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसको भारत का सर्वोच्च न्यायालय बना दिया गया।

सारांश– इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 1935ई0 के भारत सरकार अधिनियम के तहत प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की गई तथा भारत परिषद की समाप्ति कर दी गई। इस अधिनियम ने केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना करने, विधानमण्डलों का विस्तार करने, भारतीय जनता को मताधिकार देने तथा विषय विभाजन की दृष्टि से तीन सूचियां निर्धारित करने की व्यवस्था की। यह अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अन्तिम अधिनियम था। जब भारतीय संविधान का निर्माण किया गया तो संविधान निर्माताओं ने इस अधिनियम की काफी व्यवस्थाओं को भारतीय संविधान में शामिल करके इसकी उपयोगिता को सिद्ध कर दिया कि यह अधिनियम वास्तव में भारत में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना करने तथा भारत के संवैधानिक विकास की दृष्टि से मील का पत्थर था।

सन्दर्भ सूची –

1. आर.के.परूथी, (सम्पादित), **आधुनिक भारतः 1858–1905ई,** अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009.
2. आर.सी.वरमानी, **कॉलोनाईजेशन एण्ड नेशनलिज्म इन इंडिया,** गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2001.
3. आर.सी.वरमानी, **भारत में उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद,** गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2003.
4. ओ.पी.नागपाल, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, **संवैधानिक विकास और संविधान**, कमल प्रकाशन, दिल्ली, 1974.
5. उर्मिला शर्मा एवं एस.के.शर्मा, **भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन,** एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1999.
6. एम.एल.धवन, **भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतन्त्रता संघर्ष,** भाग 1एवं 2, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008.
7. शिवकुमार गुप्त, **आधुनिक भारत का इतिहासः 1919–1950ई,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1999.
8. शिवानी किंकर चौबे, **भारत में उपनिवेशवाद, स्वतन्त्रता संग्राम और राष्ट्रवाद,** ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
9. सोहन राज तातेड़, **भारतीय नवजागरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन,** खण्डेलवाल पब्लिशर्स, जयपुर, 2014.
10. सुमित सरकार, **आधुनिक भारतः 1885–1947,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.